बातचीत

वैज्ञानिक चेतना के विकास में विज्ञान शिक्षण

प्रो. विजया एस. वर्मा

स्कूली शिक्षा में विज्ञान शिक्षण के अनिवार्य होने के बाद भी आमतौर पर यह देखा जाता है कि इससे व्यक्ति के जीवन और सोच में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। ऐसे क्या कारण हैं कि हमारी स्कूली शिक्षा में विज्ञान शिक्षण के माध्यम से दुनिया को जानने-समझने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास नहीं हो पा रहा है ? बेहतर विज्ञान शिक्षण के लिए होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम पर भी चर्चा की गई है।

प्रो. विजया एस. वर्मा से रविकांत, प्रमोद पाठक एवं विश्वंभर की बातचीत

प्रश्न : दसवीं तक विज्ञान शिक्षण अनिवार्य होने के बावजूद एक सामान्य-सी बात यह देखने को मिलती है कि इससे विद्यार्थियों में वैज्ञानिक चेतना का विकास भलीभांति नहीं हो पा रहा है। स्कूल या कॉलेज से पढ़कर निकलने वाले व्यक्ति या जो पढ़ा लिखा वर्ग है वह सामाजिक जीवन में जिस तरह के व्यवहार करता है उसमें विज्ञान का प्रभाव नजर नहीं आता। इसके बहुत से उदाहरण आम जीवन में देखने को मिलते हैं जैसे डॉक्टर ऑपरेशन से पहले भगवान की मूर्ति के आगे नत मस्तक होते हैं। इंजीनियर भवन बनाने से पहले भूमि पूजन करते हैं। स्त्रियां अच्छे पति के लिए व्रत करती हैं और महादेव जी की पूजा करती हैं। शिक्षा में विज्ञान शिक्षण के बावजूद इन सब चीजों के होने के क्या कारण हैं ? ऐसा भी लगता है कि यह पिछले 10-15 सालों में ज्यादा बढ़ा है जबकि एक ओर विज्ञान या तकनीक के उत्पादों को देखकर लगता है कि आज हम विज्ञान के युग में रह रहे हैं।

उत्तर : आपका आशय है कि विज्ञान शिक्षण के बावजूद भी लोग क्यों अंधविश्वासपूर्ण या अवैज्ञानिक तरीके से काम करते हैं ? मेरे हिसाब से इसके दो कारण हैं। एक तो जिस तरह से स्कूलों में विज्ञान शिक्षण होता है, उन तरीकों में ही खामी है। दूसरा, सामाजिक प्रवृत्तियों पर शिक्षा का सीधा-सीधा असर नहीं पड़ता। शिक्षार्थी पर हमारे समाज का भी असर पड़ता है। ये दोनों ही कारण हैं। पहले मैं विज्ञान की पढ़ाई के बारे में बात करूं। हमारे स्कूलों में विज्ञान शिक्षण में कोई भी प्रयोग नहीं किए जाते। अभी हाल ही में एक रिपोर्ट आई थी। पहले शायद हायर सैकेण्डरी में 30 प्रतिशत अंक प्रयोगशाला के कार्य के होते थे। अब यह कहा जा रहा है कि प्रयोगात्मक कार्यों के लिए स्कूलों में दिए जाने वाले अंकों के बारे में पता नहीं चलता है कि वे निष्पक्ष तरीके दिए गए हैं या नहीं। अतः इसके स्थान पर एक लिखित परीक्षा ली जाएगी। इससे यह तय किया जाएगा कि विद्यार्थियों ने वास्तव में वे प्रयोग किए हैं या नहीं। और इस जांच में प्रयोग नहीं कराए जाएंगे। इसका असर क्या होगा ? इसका असर यह होगा कि कुंजियां और लिखी जाएंगी। रट्टे और लगाए जाएंगे और जो स्कूल प्रयोगशालाओं में थोड़े बहुत प्रयोग कर रहे थे वे भी इस कदम से बंद हो जाएंगे।

लेखक परिचय :

थियेरेटिकल फिजिक्स में लंदन से पी.एच.डी, होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के संस्थापक सदस्य। दिल्ली विश्वविद्यालय में फिजिक्स के प्रोफेसर एवं डीन रहे।

सम्पर्क :

180, माल अपार्टमेन्ट्स, माल रोड, दिल्ली -54

बहुत से कारणों से हमारे यहां एक सिलसिला यह शुरू हो गया है कि विज्ञान को भी बाकी और विषयों की तरह ही पढ़ाया जा सकता है। आपके पास एक किताब है, किताब में कुछ ज्ञान दिया हुआ है और उस ज्ञान को आप बच्चों को रटवा दो। हमारे यहां इम्तिहान में भी ऐसे ही सवाल पूछे जाते हैं जिससे बच्चों की रटने की क्षमता का पता चल जाए। न उसमें अवलोकन क्षमता की जांच होती है, न ही यह देखा जाता है कि बच्चा प्रयोग कर सकता है या नहीं। प्रयोग के आधार पर बने ज्ञान की अभिव्यक्ति को भी नहीं जांचा जाता। उदाहरण के लिए, अक्सर बच्चे इस तथ्य को मानते हैं कि मक्खियों की पैदाइश गोबर में होती है। लेकिन इस साधारण-सी बात को समझाने के लिए छोटा-सा प्रयोग करके नहीं दिखाया जाता कि यह सही है या नहीं। बस वही रटाते रहते हैं जो किताब में लिखा हुआ है कि, मक्खियां इल्लियों से निकलती हैं। वास्तव में यही सोच विज्ञान के व्यवहारिक पक्ष को सामने नहीं आने देती। एक तरह से विज्ञान को ऐसे पढ़ाया जाता है जैसे इतिहास पढ़ाया जाता है और मैं यहां इतिहास पढ़ाने के प्रचलित तरीके को भी सही नहीं मानता। इतिहास पढ़ाने का भी तरीका ठीक नहीं है। हम यह मानते हैं कि यदि बच्चे ने रट लिया तो उसको विज्ञान आ गया। विज्ञान में ज्ञान प्राप्ति के जो तरीके हैं उनकी समझ बनाने पर ध्यान नहीं दिया जाता कि किस तरीके से विज्ञान खोज करता है, किस तरीके से विज्ञान आगे बढ़ता है, किस तरीके से वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। इस पर स्कूलों में कोई जोर नहीं है। इसलिए मुझे ताज्जुब नहीं होता जब स्कूलों से निकलकर जो लोग डॉक्टर बन जाते हैं वे ऑपरेशन करने से पहले मंदिर के सामने मत्था टेकते हैं या पूजा पाठ करते हैं। ये तो एक पहलू हुआ।

दूसरा पहलू है कि हमारे समाज में संसाधन बहुत कम हैं। इसकी वजह से एक होड़-सी लगी रहती है कि यदि हमें कुछ नहीं मिला तो क्या होगा ? इसलिए सभी रोटी के एक छोटे से टुकड़े को पाने के लिए जुटे रहते हैं। इस स्थिति के और कारण भी हैं। जब कोई विद्यार्थी यह देखता है कि समाज में सभी चीजें अपने प्रयासों से नहीं मिलतीं। यानी जो मिलता है उसके लिए अनेक प्रकार की जोड़-तोड़ भी करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी सोचता है कि जो मिल रहा है उसमें बाहरी ताकतों का भी योगदान है तो मेहनत क्यों की जाए। फिर लोग सोचते हैं कि ठीक है कुछ हद तो हम जो काम कर रहे हैं हमें उसका नतीजा मिलता है लेकिन ज्यादा असर उन चीजों का है जिन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। अगर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है तो फिर सोचते हैं कि भईया चलो पूजा करते हैं या मन्नत मनाते हैं। हो सकता है कि ये सब करने से हमें सफलता मिल जाए। जब तक सीखने-समझने और सफलता के लिए मानवीय प्रयासों को स्थापित नहीं किया जाएगा तब तक इस व्यवस्था में सुधार मुश्किल है। तो जब तक यह खालीपन हमारी आम जिन्दगी से दूर नहीं होगा तब तक इन प्रवृत्तियों की कमी के बारे में हम नहीं सोच सकते।

प्रश्न : लेकिन एक सवाल यह भी है कि हमारे यहां प्रयोगशालाओं में भी होता यह है कि पहले हम प्रयोग के नतीजों को रट लेते हैं और फिर उन्हीं नतीजों को लाने के लिए प्रयोग करते हैं।

उत्तर : प्रयोग करने का तरीका भी थोड़ा-सा गड़बड़ है न! हम स्कूलों में केवल ही किताबों में पहले से दिए गए प्रयोगों को करवाते हैं। कभी भी नई खोज और उसके अंजाम को देखने के लिए प्रेरित नहीं करते। ऐसे में बच्चा सोचता है कि प्रयोग करने की क्या जरूरत है। वह मानता है कि जवाब तो पहले से किताब में लिखा हुआ ही है उसे ही गणना करके निकाल लूंगा। यदि प्रयोग सही तरीके से कराए जाएं तो वहां से खोज करने के तरीके निकल सकते हैं।

प्रश्न : आप कह रहे हैं कि विज्ञान में यदि ठीक से खोज करना सिखाएं तो बच्चों का सीखना ज्यादा बेहतर होगा। लेकिन हमारी शिक्षा व्यवस्था में जो ब्राह्मणवाद का प्रभाव है, जिसका कृष्ण कुमार ने बहुत सटीक ढंग से अपनी किताब ''गुलामी की शिक्षा व राष्ट्रवाद'' में जिक्र किया है कि जिन लोगों का शिक्षा पर समग्र नियंत्रण है, उन लोगों में अधिकांश ब्राह्मणवादी मानसिकता को मानने वाले हैं, कई जाति से हैं तो कई विचार से हैं। उसकी एक मुख्य बात यह है कि हाथ से काम नहीं करना है, हमें तो सिर्फ विचार या बात से काम चलाना है। मुझे लगता है कि इस मानसिकता का भी विज्ञान में हाथ से काम करके देखने को रोकने में योगदान है। आपको क्या लगता है ?

उत्तर : हां, इसका भी योगदान है न। यदि आप अपने हाथ से काम करने के लिए तैयार नहीं हैं, आप नई चीज की खोज करने के लिए तैयार नहीं हैं, जिसमें मेहनत और श्रम लगता है तो फिर आप आगे बढ़ोगे कैसे ? बाहर से, विदेश से जो ज्ञान आता जाएगा उसको आप अपनाते जाओगे और आपकी अपनी तो कोई वृद्धि होगी ही नहीं। सोचने की कोई वृद्धि ही नहीं होगी। यह कहना मुश्किल है कि यह किस हद तक ब्राह्मणवाद का प्रभाव है लेकिन यह तो सही है कि हम हमेशा ऐसे तरीके ढूंढ़ते हैं जिसमें हाथ से काम नहीं करना पड़े।

प्रश्न : हमारे यहां पर प्रयोग करने में भी इस पर जोर नहीं रहता है कि विद्यार्थी की क्षमताएं जांची जाएं कि इस प्रयोग में वह ऐसी कौनसी क्षमताएं इस्तेमाल कर रहा है जो उसके वैज्ञानिक नजरिए को विकसित करने में काम आएंगी बल्कि सारा ध्यान इस पर रहता है कि इसका परिणाम क्या आने वाला है। यह नहीं देखा जाता कि वह कैसे अवलोकन करता है या अपने अवलोकनों की गणना किस प्रकार कर रहा है या तथ्यों का विश्लेषण किस प्रकार कर रहा है।

उत्तर : जहां तक परीक्षा की बात है तो आप कैसे पढ़ाएं, क्या पढ़ाएं यह इस बात से तय होता है कि परीक्षा में आप किस तरह के सवाल पूछते हैं। आपके जांचने के तरीके इन दोनों चीजों को निर्धारित करते हैं। यदि आप हमेशा से ही परीक्षा में वही सवाल पूछें जो कि किताबों में लिखे हुए हैं, जिनमें अलग ढंग से सोचने की जरूरत न पड़े तो विद्यार्थी क्यों श्रम करेगा ? आमतौर पर परीक्षाओं में यही होता है कि गत 10 सालों के सवालों के सैट से ही उलट-पुलट कर सवाल पूछते रहते हैं। सालों-साल, पचासों सालों से आप वही सवाल पूछ रहे हैं। तो नतीजा क्या होगा, जो अभी हो रहा है कि, बच्चे दस सवाल रट के आएंगे। 10 में से 5 वहां पर आ जाएंगे जिनमें से तीन-चार अच्छी तरह से रटे रटाए होंगे और बच्चे पास हो जाएंगे और आगे की कक्षा में आ जाएंगे। तो परीक्षा प्रणाली भी विज्ञान की इस दुर्दशा के लिए जिम्मेवार है। यदि परीक्षा प्रणाली में रचनात्मक क्षमता को जांचने वाले तरीके नहीं होंगे तो भी सुधार की गुंजाइश नहीं होगी और आप हमेशा केवल याददाश्त को ही जांचेंगे। इस समय आपकी जितनी प्रवेश परीक्षाएं हैं, उनका जो चरित्र है वह आपके पूरे पढ़ाने के चरित्र को तय कर देता है। आप जानते हैं कि एक जमाना था जबकि आईआईटी वगैरह नहीं थे। आईसीएस या आइएएस की परीक्षाएं हुआ करती थीं। उसमें जनरल नॉलेज को बहुत महत्त्व दिया जाता था। उसका नतीजा यह हुआ कि जब हमारे बच्चे कक्षा एक में जाते थे तो कक्षा एक से जनरल नॉलेज पढ़ाना शुरू कर दिया। जनरल नॉलेज पढ़ाने का तरीका भी उसे रटवा देना था। कोई चिन्तन का विषय जनरल नॉलेज में नहीं आता है। अगर आपको रटकर सारा कुछ याद है तो आप कहेंगे इसको बहुत जनरल नॉलेज है। आजकल भी कई शिक्षक, यदि आप पूछें तो जनरल नॉलेज को एक विषय की तरह ही प्राथमिक कक्षाओं के लिए प्रस्तावित करते हैं।

प्रश्न : शालाओं में जिस प्रकार का विज्ञान शिक्षण चल रहा है उसका हमारे समाज पर किस प्रकार का असर पड़ रहा है ?

उत्तर : मैं कहूंगा कि इसका असर नहीं पड़ रहा है। यदि आप बच्चों को कोई चीज सिखाते हैं तो ज्ञान का हस्तांतरण भी आसानी से नहीं हो जाता। मतलब कि आपने विज्ञान में जो कुछ तरीके सीखे हैं उनको भी अपनी आम जिन्दगी में प्रयोग में लाना आसानी से नहीं हो जाता है। उसमें भी आपको कुछ सोचना पड़ता है। उसमें और भी काम करने की जरूरत पड़ेगी। अपने शिक्षण में ही जब आप सिद्धान्तों के ऊपर जोर नहीं दे रहे हैं तो इसके समाज पर प्रभाव पड़ने की संभावना तो है ही नहीं। और हम हमेशा घूम फिर कर उन्हीं रटने वाली चीजों पर आ जाते हैं। कुछ लोगों ने सोचा कि विज्ञान में कुछ खोज होनी चाहिए। बच्चों को कुछ प्रोजेक्ट्स दिए जाने चाहिएं। अब प्रोजेक्टों का हाल क्या हुआ ? एक साल चला, दो साल चला। उसके बाद अब आप बाजार में जाकर पूरा प्रोजेक्ट बना बनाया खरीद सकते हैं। उसको खरीद कर ले आओ। स्कूल में ले जाकर डाल दो। आपको नंबर मिल जाएंगे। सामाजिक रूप में सीखने की जो एक लगन होनी चाहिए वह हम में नहीं है। हमें तो नंबर लाने हैं, इम्तिहान पास करना है। और यह तो एक सामाजिक दृष्टिकोण भी है। इसको कैसे दूर किया जा सकता है मुझे नहीं मालूम।

प्रश्न : अभी यह बात उठी कि विज्ञान शिक्षण तो स्कूलों में उचित तरीके से होता ही नहीं है। लेकिन एक दिलचस्प बात यह भी है कि आज के समय में बहुत-सी बातों को वैज्ञानिक सिद्धान्त कह कर प्रचारित किया जाता है। मीडिया भी इसका खूब प्रचार करता है। जैसे महिलाएं बिन्दी लगाती हैं तो कहेंगे कि ये तो विज्ञान से जुड़ा हुआ मामला है, हाथ में चूड़ी या पैरों में पाजेब पहनने से शरीर के कुछ खास बिन्दुओं पर दबाव पड़ेगा और उससे स्वास्थ्य ठीक रहेगा। विज्ञान के नाम पर इस तरह की चीजों का भी प्रचार किया जाता है। हम लोग ये कैसे तय करें कि ये तो विज्ञान के सिद्धांत हैं और ये नहीं हैं ? इसी से मिलती-जुलती एक बात है कि राजस्थान में वेद विज्ञान नाम की एक और चीज चल पड़ी है। वेद में कितना विज्ञान है ?

उत्तर : यह जो वैदिक गणित या वेद विज्ञान है, यह क्या है ? शंकराचार्य ने, जिन्होंने यह दिया भी है, उन्होंने भी नहीं कहा है कि यह वेदों से लिया गया है। तो इसको वेद रचित कहना उचित नहीं है। उन्होंने केवल यह कहा कि वेदों से जो हमने सीखा उसके आधार पर ध्यान लगाने से हमें ये तरीके मिले हैं। ये तरीके क्या हैं ? आप जल्दी से जल्दी गणना कैसे कर सकते हैं ? यह तो शकुन्तला देवी भी करती हैं। वह तो नहीं कहतीं कि वेदों में यह लिखा हुआ है। 'थैचनबर्ग स्पीड सिस्टम ऑफ मैथेमेटिक्स' नाम की पूरी किताब है जो यह बताती है कि आप किस तरह से जल्दी-जल्दी गणनाएं कर सकते हैं। मुझे कोई ऐतराज नहीं है कि आप इसे यदि इस उद्देश्य से सिखाएं कि बच्चे जल्दी-जल्दी गणना करना सीख सकें। पर उसमें वेदों का नाम जोड़ने की क्या जरूरत है ? आप देखिए जितना भी गणित कम से कम आजकल शुरू की कक्षाओं में पढ़ाया जाता है उस सारे गणित की शुरूआत हमारे देश में हुई है। आप लीलावती को देखें तो जो तरीके इसमें दिए हुए हैं-जोड़ने, घटाने, गुणा करने, भाग देने और वर्गमूल निकालने के, हूबहू वही तरीके हैं जिन्हें हम आज इस्तेमाल करते हैं। कोई नहीं कहता कि ये और कहीं से आए हैं। हम उस पर जोर नहीं देंगे, क्योंकि ऐसे लोगों को मालूम ही नहीं है कि ये तरीके वहां से आए हैं। झूठमूठ के दावे करना चाहें तो करते रह सकते हैं। लेकिन अगर वास्तव में

आप खोज करके किसी बात को आगे बढ़ाएं तो समझ भी आता है। मैं यह कहना चाहता हूं कि आपको ढोंग रचने की जरूरत नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि सारा कुछ हमारे देश में हुआ। जो हुआ है उसको आप गर्व से कहिए लेकिन उतना ही जितना हमने किया है। जैसे आजकल खगोलविज्ञान एवं ज्योतिषशास्त्र के बारे में चला हुआ है। अब कुछ लोग ज्योतिषशास्त्र को भी विज्ञान घोषित करना चाहते हैं। और इसे विश्वविद्यालय में पढ़ाना चाहते हैं। खगोलविज्ञान के बारे में हमारे देश की जो खोजें हैं उन पर जो काम हुआ है, विज्ञान में उस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके बजाए एक अंधविश्वास की चीज को लेकर पहले उसे विज्ञान घोषित करने की कोशिश की जा रही है और फिर उसे विज्ञान के नाम पर पढ़ाने की तैयारी की जा रही है! मतलब क्या है, क्यों करना चाहते हैं यह सब ?

प्रश्न : यह कैसे पता किया जाए कि खगोल विद्या तो विज्ञान है लेकिन ज्योतिष विद्या विज्ञान नहीं है ?

उत्तर : देखिए, ज्योतिष वाले कहते हैं कि आखिर विज्ञान में क्या करते हैं लोग ? गणना करते हैं, ढेर-सा हिसाब लगाते हैं। हम भी तो वही करते हैं। हम भी बैठकर हिसाब लगाकर आपको बताते हैं कि आपका भविष्य क्या है ? हम भी अध्ययन करते हैं, तारे कहां हैं और उनकी स्थिति से हमारी जिंदगी पर क्या असर पड़ सकता है ? हम तारे देखकर यही तो बताते हैं। दोनों में फर्क यह है कि जब हम खगोल विज्ञान की बात कर रहे हैं तो वहां पर आज के दिन गणना करके हममें यह समझ बनी है कि एक गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त है और उसी के आधार पर हम कुछ गणना करते हैं। और वहां सिर्फ गणना से ही काम नहीं चलता बल्कि उसका प्रमाणीकरण भी करते हैं। और इस प्रमाणीकरण के भी मान्य तरीके हैं। मतलब किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्त या थियरी को हम सही तब मानते हैं जबकि वह एक नयी स्थिति में कोई भविष्यवाणी करे और उस भविष्यवाणी को जांच करके खुद अपने आपको प्रमाणित करे ताकि हम जान सकें कि जो दावा किया जा रहा है वह वास्तव में सही पाया जाता है या नहीं। अगर दावा सही नहीं निकलता है तो फिर आपकी थियरी गलत है। विज्ञान के संदर्भ में यह एक बेहद महत्त्वपूर्ण बात है। यदि आप ज्योतिषी के पास जाएंगे तो वहां दिए जा रहे नतीजों के प्रमाणीकरण के लिए कोई स्थान नहीं होगा। कुछ लोगों ने इसका अध्ययन भी किया है। उनके निष्कर्ष लगभग एक सिक्का उछालने जैसे होते हैं जिसका अर्थ है कि वे पचास प्रतिशत सही भी हो सकते हैं और पचास प्रतिशत गलत भी। प्राकृतिक विज्ञानों में घटनाओं में जो कार्य-कारण का संबंध है वह महत्त्वपूर्ण होता है। जो कि अनिवार्य जैसा होता है। लेकिन ज्योतिष में ऐसा नहीं होता। यदि ज्योतिष की भविष्यवाणी एक बार सही निकलती है तो उसे लोग याद रखते हैं और जो गलत हो जाती है उसे भूल जाते हैं। मेरे ख्याल से यह केवल एक अंधविश्वास है और यह शिक्षा की कमी के कारण होता है और यही तो शिक्षा की कमी है कि लोग तरह के अंधविश्वासों में यकीन करते हैं। या दूसरी तरह से इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि यह एक तरह का डर है। जिसे अंजाम का डर कहा जा सकता है। लोग डर की वजह से मानते हैं कि हो सकता है ऐसा करने से भगवान खुश हो जाएं और हमें बुरे अंजाम से बचाएं या हम जिस चीज को पाना चाहते हैं वह हमें दान में मिल जाए।

प्रश्न : पहले भी यह सवाल उठा था उसके जवाब में आपने कहा है कि हमारे यहां विज्ञान शिक्षण वैज्ञानिक चेतना का विकास नहीं कर पाया है। इसी से जुड़ा एक और सवाल उठता है कि वैज्ञानिक शिक्षण की जरूरत क्यों है ? हम विज्ञान की मदद से किस तरह की क्षमताएं, अभिवृत्तियां बच्चों में विकसित करना चाहते हैं ?

उत्तर : आज के दिन आप यह सवाल कैसे पूछ सकते हैं कि विज्ञान की जरूरत क्या है ? वैज्ञानिक दृष्टिकोण की जरूरत क्या हैं ? आप अपने यहीं देखो विज्ञान के कितने अविष्कार तकनीक की मदद से हमें उपलब्ध हैं। अगर आप अपने देश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं बढ़ाओगे, वैज्ञानिक शोध नहीं करोगे, उसका समर्थन नहीं करोगे तो कितने दिन तक आप विदेशी चीजों और ज्ञान पर निर्भर रहोगे, जो अभी तो मिल रहा है। देखिए, हम सब गाड़ियों में बैठकर खूब घूमते हैं। जिस दिन तेल खत्म हो जाएगा उस दिन तो आपकी गाड़ियां नहीं चलेंगी, तो कुछ तो खोज करनी पड़ेगी। तब वैकल्पिक तरीकों की जरूरत होगी कि यातायात के वैकल्पिक तरीके क्या होंगे ? क्योंकि हम अपनी पूरी इकॉनोमी तो बन्द नहीं करने वाले हैं। होगा क्या कि अमेरिका जो अभी अपने तेल का उत्पादन नहीं कर रहा है, वह इराक से निकाल रहा है, ईरान से निकाल रहा है, उसके अपने जो तेल भण्डार हैं उसको अभी नहीं छू रहा है। एक जमाना आएगा कि तेल केवल अमेरिका के पास होगा और आप अपने बजट से पैसे देते जाओगे और जो भी अपने यहां वृद्धि हो सकती है वह सारी बाहर चली जाएगी।

दूर की मत सोचिए आज ही देखिए, हमारी जो शिक्षा प्रणाली है इसमें बहुत-सी कमियां हैं और इनमें सुधार नहीं करने का क्या नतीजा हो रहा है ? अगर आप इस समय यह गणना करें कि हमारे कितने विद्यार्थी अपने पैसे लगाकर अमेरिका, इंगलैण्ड, कनाडा और आस्ट्रेलिया में पढ़ रहे हैं तो उन सबका जो योग है वह हमारे शिक्षा के राष्ट्रीय बजट के करीब-करीब बराबर है। अस्सी हजार बच्चे हर साल जाकर केवल अमेरिका के विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हैं। वहां उनकी पढ़ाई में एक साल में कम से कम 15 से 20 हजार डालर खर्च होते हैं और इसमें उनके रहने खाने का खर्च अलग है। अगर इसको ही आप 80,000 से गुणा करें तो क्या आंकड़े आते हैं। और ये सब

मुद्रा बाहर जा रही है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इनका खर्च सरकार दे रही है। हमारा ही है लेकिन उस राशि को लगाकर यहीं अच्छे शैक्षिक संस्थान बना दिए जाएं तो यह सबके हित में हो जाएगा। विदशों में पढ़ने वाले बच्चे भी यहां पढ़ सकते हैं और हमारे गरीब बच्चे भी उसमें शामिल हो सकते हैं। इससे प्रशिक्षण के स्तर में वृद्धि होती और जिन वैज्ञानिक विचारों के लिए हम हमेशा विदेशों की ओर देखते हैं वे यहां होने लगेंगे। यह भी सही है कि अक्सर हिन्दुस्तानी लोग वहां जाकर काम करके आविष्कार करते हैं लेकिन यहां अभी कोई अविष्कार नहीं कर रहा। मगर इसके लिए अंग्रेजी में कहते हैं कि, देयर इज नो फ्री लंच - मुफ्त का खाना कोई नहीं खिलाता। यदि आपको कोई खाना देगा तो उसके पैसे जरूर किसी न किसी तरीके से लेगा। तो अगर हम अपने को वास्तव में एक विकसित देश बनाना चाहते हैं तो विज्ञान को अच्छी तरह पढ़ना, विज्ञान में अच्छी तरह खोज करना और उन खोजों को तकनीक के स्तर तक ले जाकर अच्छे उत्पाद बनाना बहुत ही जरूरी है।

प्रश्न : विज्ञान शिक्षण का जो सवाल है यह केवल हाथ से काम करने और अर्थ व्यवस्था से ही जुड़ा हुआ है या इसका हमारी सामाजिक संरचना से भी कुछ लेना देना है ?

उत्तर : जरूर लेना देना है। आप इंगलैण्ड में चले जाइए। वहां अगर घर में प्लग फ्यूज हो गया है तो औरतें अक्सर पेचकस निकाल कर उसको ठीक करके लगा देती हैं। और बहुत से कारण हैं सिर्फ यही एक कारण नहीं है। ये सब उनको स्कूल में सिखाया जाता है। हमारे यहां कुछ औरतें ऐसा कर लेती हैं पर आमतौर से औरतों को तो छोड़ दीजिए हम खुद नहीं करते। एक समय ऐसा आएगा कि मिस्त्री को बुलाने में जितना खर्च होगा उसको आप वहन नहीं कर पाएंगे। मैं केवल आर्थिक आधार के तर्क नहीं देना चाहता। इसका सोचने पर भी फर्क पड़ता है। यदि बच्चों को ढंग से विज्ञान और केवल विज्ञान ही नहीं बल्कि अन्य विषय भी पढ़ाएं और विद्यार्थियों को कहा जाए कि सोचना ज्यादा जरूरी है, रटना जरूरी नहीं है। यदि आप ऐसा करेंगे तो इसके लिए आपको अपने पढ़ाने के तरीके भी बदलने पड़ेंगे। इम्तिहान लेने के तरीके बदलने पड़ेंगे। ये नहीं होगा कि आप कहें कि दस सवाल तीन घंटे में करके हमें दे दो। परीक्षा के इस तरीके में बच्चे वही सवाल कर सकते हैं जिनको उन्होंने पहले से हल कर लिया हो। नये सवाल आप कभी नहीं पूछ सकते। इसलिए सोचने की रचनात्मक क्षमता कभी नहीं विकसित होगी। ये सब आप करोगे तो हमारे समाज में विज्ञान शिक्षण का महत्त्व बढ़ेगा। यदि शिक्षण सही तरह से होगा तो बच्चा आपसे अलग-अलग चीजों के बारे में बात कर सकता है और समझा सकता है। वह केवल महाभारत रामायण पर ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर भी बात कर सकता है। वह बता सकता है कि टयूब लाइट कैसे जलती है, सूरज से जो किरणें निकलती हैं उसमें ऊर्जा कहां से पैदा होती है ? उसके तरीके क्या हैं ? तारों में क्या प्रक्रिया चल रही है ? जैसे-जैसे आप विज्ञान की पढ़ाई में समझ को विकसित करने पर जोर देंगे तो सिर्फ सोचने के तरीकों में ही नहीं बल्कि सामाजिक संबंधों में भी बदलाव आएगा और विज्ञान शिक्षण को महत्त्व दिया जाएगा। केवल शोध और प्रयोगशालाओं में ही नहीं बल्कि समाज में भी कि, हां विज्ञान हमारी जिन्दगी में महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि हमें इससे ये उपलब्धियां मिलती हैं। इसलिए अच्छे तरीके से विज्ञान पढ़ाना वैज्ञानिक नजरिया बनाने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न : तकनीक का संबंध बहुत ही सीधे रूप में हमारे जीवन में नजर आता है। तकनीक ने हमारे जीवन को आसान भी बनाया है। लेकिन विज्ञान शिक्षण से जुड़े संस्थानों में एक समस्या यह रहती है कि वहां तकनीक को ही विज्ञान मानकर शिक्षण करवाया जाता है। लेकिन इसकी एक दिक्कत भी है। वे तकनीक से आगे बढ़ के विज्ञान पर जाने में अटक जाते हैं। मेरा सवाल यह है कि तकनीक और विज्ञान का जो फर्क है उसे कैसे समझा जाए ताकि तकनीक को विज्ञान से अलग करके भी देखा जा सके ?

उत्तर : देखिए, समाज में सभी लोग तो वैज्ञानिक नहीं हो सकते न। जो मजदूरी करते हैं, फैक्ट्री में काम करते हैं और इसमें जो चीजें इस्तेमाल करते हैं उनका तो तकनीक में प्रशिक्षण होना ही चाहिए। जब आप उनका प्रशिक्षण करते हैं तो उससे जुड़ी अवधारणाएं भी सिखानी चाहिएं। अभी क्या हो रहा है कि आप केवल तकनीक के सही तरीके सिखा रहे हैं। बैल्डिंग का सही तरीका, बिजली सुधारने का सही तरीका सिखा दिया। लेकिन बिजली सुधारने वाले को सर्किट की अवधारणा नहीं बताते। और जिस तरह से वे काम करते हैं उससे मुझे उनके हुनर का तो पता चलता है लेकिन मैं मानता हूं कि हुनर से शुरू करके उसमें आगे की थोड़ी समझ भी होनी चाहिए। और यह सब तब ही होगा जब स्कूलों में जो बुनियादी शिक्षा दी जा रही है वह ठीक तरह से हो। तकनीक सिखाते हुए इससे जुड़े वैज्ञानिक मुद्दे हैं उनको आप साथ-साथ समझाते चले जाइए। आठवीं जमात तक जो भी विज्ञान पढ़ाया जाए उसमें एक समझ उत्पन्न करने की कोशिश होनी चाहिए।

प्रश्न : आपने होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में काम किया है। वहां पर बच्चों एवं शिक्षकों के साथ काम करने के आपके क्या अनुभव रहे हैं ?

उत्तर : जो कुछ मैं आपसे बात कर रहा हूं ये वहीं के अनुभव के आधार पर हैं। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम सन् 1972 में शुरू हुआ था। मैं उससे 1973 से जुड़ा हुआ हूं। यह कार्यक्रम जब शुरू हुआ

तब 16 स्कूल थे। उसके बाद 100 स्कूल हो गए। फिर स्कूलों की संख्या और बढ़ी तो मैं थोड़ा पीछे हट गया। हमारी समझ यह थी कि बच्चों को विज्ञान सिखाना है और अच्छे तरीके से सिखाना है। काम शुरू करने के लिए हमें पहली जरूरत यह लगी कि यह समझा जाए कि ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों की वास्तविक स्थिति क्या है ? उसकी एक गहरी समझ बननी चाहिए। हम लोग दिल्ली से गए और कुछ लोग वहां भी थे-किशोर भारती और रसूलिया मित्र मंडल में। हम वहां पर लगभग 6-6 महीने रहे। सर्वप्रथम हमने वहां के स्कूलों की स्थिति क्या है, वहां क्या सामग्री उपलब्ध है एवं विज्ञान में वहां के अध्यापकों की कितनी समझ है, इसे समझने की कोशिश की।

यह सब जांच करके हमने एक निर्णय लिया कि हम विज्ञान को इस तरीके से पढ़ाएंगे कि बच्चों के लिए प्रयोग द्वारा सीखना जरूरी हो जाए। यह हमारा विचार नहीं था कि हम पाठ्यपुस्तक देकर बच्चों को रटवा देंगे। हमने पाठ्यपुस्तकों को हटवा दिया। हमारी यह कोशिश थी कि क्या यह संभव है कि हम विज्ञान शिक्षण का एक ऐसा कार्यक्रम बना सकते हैं जिसमें प्रयोगों के द्वारा सिखाया जाए। इसके लिए प्रयोग खोजे गए और यह ध्यान रखा गया कि वे आसान हों ताकि उन्हें बच्चे खुद कर सकें। बच्चे जो प्रयोग करें उसके लिए हरेक स्कूल में सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए। और क्योंकि प्रयोग बच्चों को करने हैं तो सामग्री बहुत महंगी भी नहीं होनी चाहिए। सामग्री उतनी मात्रा में हो कि प्रत्येक बच्चे अलग-अलग नहीं लेकिन व चार - पांच की टोलियों में काम कर सकें। टोलियों में काम करने का अलग से शिक्षाशास्त्रीय महत्त्व भी है। बच्चे आपस में एक दूसरे से बात कर सकें, एक दूसरे से सीख सकें। इस पद्धति में कोई बच्चा अवलोकन कर रहा है तो कोई चार्ट बना रहा है तो कोई सामग्री इकट्ठी कर रहा है तो कोई उस पर चर्चा कर रहा है। अर्थात् जो जिम्मेदारियां हैं उन्हें शेयर कर लिया जाए। तो हमारी पहली मान्यता यही थी कि हरेक बच्चे को प्रयोग करना पड़े। ऐसा नहीं होगा कि शिक्षक ने एक कक्षा में प्रयोग करके दिखा दिया और यह मान लिया जाए कि हो गया विज्ञान शिक्षण। हमने केवल अभ्यास पुस्तिकाएं बच्चों को दीं जिसमें प्रयोग करने के तरीके दिए हुए थे। प्रयोग के बाद उन प्रयोगों पर चर्चा की जाती थी कि यह प्रयोग करके आपने क्या पाया ? उससे क्या निष्कर्ष निकलता है ? और धीरे-धीरे सही निष्कर्ष पर लाने की कोशिश करते थे।

इस कार्यक्रम को तय करने में पहले हमने एक प्रारूप बनाकर शिक्षकों के साथ भी शेयर किया। जिसमें यह तय किया गया कि जितने भी शिक्षक इस कार्यक्रम में होंगे उन सबका एक प्रशिक्षण होगा। और प्रशिक्षण भी हफ्ते-दस दिन का नहीं बल्कि गर्मियों में 3 हफ्ते का होगा और हरेक शिक्षक उसमें लगातार तीन साल तक आएगा। हम पहले से तैयारी करके ले जाते थे कि पहले साल का कार्यक्रम क्या होगा। उसमें हमने सामग्री चुनी और प्रयोग ऐसे चुने जो आसानी से किए जा सकते हों, उन प्रयोगों की सामग्री को एक किट के रूप में हमने तैयार किया। पहले जो सामग्री चुनी उसमें बहुत सी चीजें कांच की थीं। स्टैण्ड भी थे। काफी महंगी चीजें थीं। उसमें जो केमिकल्स थे वे भी महंगे थे। हमने शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में हरेक शिक्षक से प्रयोग करवाए और उन पर बातचीत की कि इन प्रयोगों से क्या निष्कर्ष निकलता है ? उस दौरान हमें जो कुछ फीडबैक मिला वह ऐसा था कि जो हमने प्रयोग किए, इनको किया जाना संभव है भी या नहीं। इनमें जो समस्याएं थीं उसके आधार पर हमने अपने कार्यक्रम को पुनः दुरुस्त किया। इसके बाद शिक्षकों द्वारा पढ़ाने के दौरान भी हमने लगातार फीडबैक की व्यवस्था रखी। हरेक स्कूल में जब विज्ञान पढ़ाया जाता था तो हमारी टीम में से एक व्यक्ति जाता था केवल यह देखने के लिए कि कक्षाओं में विज्ञान का कार्य ठीक प्रकार से चल रहा है या नहीं। कोई निरीक्षक की तरह कक्षाएं देखने के लिए नहीं जाता था बल्कि हमारे द्वारा तय विज्ञान के पाठ्यक्रम में किस तरह की दिक्कतें हो रही हैं, बच्चे कर पा रहे हैं या नहीं ताकि पाठ्यक्रम को सुधारा जा सके। इस प्रक्रिया से भी हमें फीड बैक मिला। शिक्षकों की भी मासिक बैठक हुआ करती थी। वहां पर शिक्षण के दौरान आई समस्याओं को शिक्षक उठाया करते थे। इस तरह हमने तीन साल का एक कार्यक्रम तैयार किया।

एक तो जो सामग्री महंगी थी हमने धीरे-धीरे उसे निकाल करके स्थानीय स्तर पर जो उपलब्ध चीजें थीं उनको शामिल किया। जैसे पहले हम डिसेक्शन करने के लिए आलपिन लाया करते थे। वहां पर देखा कि बबूल के कांटे बहुत ही मजबूत हैं और हमारे काम के लिए काफी हैं तो हमने आलपिन हटा दिए और बबूल के कांटे उसकी जगह आ गए। टेस्ट ट्यूब, गिलास और फ्लास्क जो अक्सर टूटते रहते थे उनको हमने प्लास्टिक की चीजों से बदल दिया। कुछ प्रयोग थे जिसमें हमें एल्यूमिनियम के ठीक नाप के गुटकों की जरूरत पड़ती थी। वे भी महंगे थे तो उनको भी हमने लकड़ी के गुटकों से बदल दिया। इस तरह हम बहुत से छोटे-छोटे प्रयोग करते थे। अंत में हमने तीन साल की सामग्री के लिए 40 बच्चों की एक कक्षा के लिए एक किट बनाया जो करीब 1500 रुपये का था और जिससे कि पाठ्यक्रम का हरेक प्रयोग किया जा सकता था। इस किट में कुछ चीजें हर वर्ष बदलनी पड़ती थीं। इसमें भी 100-150 रुपये ही वर्ष में लगते थे।

हमारा शिक्षाक्रम विकसित करने का तरीका अन्तःक्रिया पर आधारित था। ऐसा नहीं था कि विश्वविद्यालय में बैठकर शिक्षाक्रम तय कर लिया कि ये पढ़ायेंगे और वहां जाकर पढ़ाना शुरू कर दिया। क्या पढ़ाया जाएगा यह स्कूल के शिक्षकों के साथ अन्तःक्रिया और स्कूल के फीडबैक के आधार पर तय होता था। एक और पहलू

शिक्षक प्रशिक्षण का था क्योंकि आपका कार्यक्रम कितना ही अच्छा हो अगर शिक्षक उस कार्यक्रम को समझता नहीं है या उसमें उसकी रुचि नहीं है या वह उसे बच्चों के साथ क्रियान्वित नहीं कर पाता है तो वह कार्यक्रम कभी भी स्कूल में कामयाब नहीं होगा। इसीलिए यह कार्यक्रम जब तक चला और सफल हुआ वह इसी लिए संभव हो पाया क्योंकि स्कूल के अध्यापक ने हमारी पद्धति अपना ली थी और लगन से पढ़ाया। अतः कहीं भी आप नए कार्यक्रम लागू करना चाहें, शिक्षक प्रशिक्षण को आप नहीं भूल सकते।

प्रश्न : इस कार्यक्रम का असर अन्ततः बच्चों और शिक्षकों पर क्या पड़ा ?

उत्तर : देखिए, हमने इसका कोई व्यवस्थित अध्ययन तो नहीं किया। छुटपुट-छुटपुट बाहर से लोग आकर के मिलते रहे और इस कार्यक्रम की उपलब्धियों को बताते रहे। एक समय ऐसा आया कि यह तय करना था कि इस कार्यक्रम को आगे चलाना है या नहीं। एनसीईआरटी से इस कार्यक्रम को देखने एक टीम आई थी। उन्होंने भी इस बात को माना कि बच्चों में जिज्ञासा ज्यादा है, सवाल पूछने की प्रवृति बढ़ गई है। कुछ हद तक वे अपने आप चीजें ढूंढ़ निकालते हैं। जैसे कि एक बार एक पौधे में कीड़ा लगना शुरू हो गया। गांव वालों ने कहा कि किसी देवी-देवता का प्रकोप हो गया है। बच्चों ने खुद पत्ते को काट कर देखा कि उसमें कोई बड़ी बात नहीं है। उसमें एक कीड़ा लगा हुआ है और वह कीड़ा उसे खा रहा है। हमें उसमें कुछ नहीं करना पड़ा। क्योंकि बच्चों को इस तरह की छानबीन करने का प्रशिक्षण मिला हुआ था। हम उनको बड़े फील्ड में ले जाते थे और वहां इस प्रकार के अध्ययन करते थे। पौधों की जड़ों, पत्तियों एवं तने आदि के साथ हम छोटी-छोटी खोज किया करते थे। बच्चों में इस तरह की प्रवृत्ति कमेटी ने भी नोट की। ये बच्चे जब निकल कर 10 वीं कक्षा में गए तो इनका प्रदर्शन बाकी और बच्चों से अच्छा रहा। बाकी बच्चों का प्रदर्शन सामान्य रहता था। जहां भी शिक्षक ने सिलेबस से बाहर का कोई सवाल पूछा या कोई पहल लेने की बात कही तो ये बच्चे हमेशा आगे रहते थे। अब सवाल यह है कि इन प्रवृत्तियों को समाज कितना महत्त्व देता है। यदि माता-पिता ये सोचें कि हमारे बच्चे परीक्षा ठीक से पास करें और जैसे-तैसे अच्छी नौकरी प्राप्त करें तो फिर तो इसका कोई असर नहीं होगा लेकिन यदि वे सोचें कि हमारे बच्चे अपने आप कुछ कर सकें, अच्छे इंसान बन सकें और सोच सकें तो निश्चित रूप से विज्ञान शिक्षण उनकी मदद कर सकता है।

प्रश्न : विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का असर शिक्षकों में किस प्रकार का रहा ?

उत्तर : सभी शिक्षकों पर इसका असर एक जैसा नहीं रहा। कुछ शिक्षकों ने हमारे सिद्धान्तों को अच्छी तरह अपना लिया और कुछ अपनी तरह से काम करते रहे। एक बार की बात याद है हमें। हम किसी सेमीनार में भोपाल गए थे। हमारे साथ चार-पांच अच्छे शिक्षक भी थे। सेमीनार में विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम पर चर्चा हो रही थी। भोपाल में एनसीईआरटी के क्षेत्रीय कार्यालय में विज्ञान के पाठ्यक्रम पर काफी कुछ काम किया करते हैं। वहां पर हमसे कहा गया कि आप अपने कार्यक्रम के बारे में बताइए कि आप वहां कैसे काम करते हैं ? क्या पढ़ाते हैं ? कैसे पढ़ाते हैं ? उसके लिए हमने बताना शुरू किया और जो छोटे-छोटे प्रयोग वहां हम किया करते थे उनमें से चार-पांच छोटे-छोटे प्रयोग वहां भी करके दिखाए। साधारण प्रयोगों से विज्ञान कैसे सीखा जा सकता है इसी बात पर हमारा जोर भी था। एक प्रयोग उन्हें दिखाया और कहा कि यह प्रयोग आप भी कर सकते हैं कि एक गत्ते को गोल काट लो, उसके बीच में एक छेद करके उसको एक धागे से लटका दो। यदि उसे साधारण तरीके से घुमाना शुरू करें तो वह हिलते-हिलते घूमता रहता है लेकिन यदि आप पहले चकरी को गोल घुमा दें और वह घूमना शुरू कर दे फिर उसे घुमाएं तो वह सीधे घूमता रहता है और फिर आप उसे आगे पीछे करें तो भी वह सीधे-सीधे घूमता रहता है (बिना बल खाए घूमता रहता है)। इसका महत्त्व यह है कि इसमें हमने एंगुलर मूवमेंट डाल दिया। इससे एक ऊर्जा उसमें आ गई और वह बनी रहती है। इसलिए क्योंकि इसका जो अक्ष होता है जिस पर वह घूम रहा है वह हमेशा एक दिशा में चलेगा।

इस पर दर्शकों में से लोगों ने कहा भई इसका क्या फायदा है और आप इसे बच्चों को कैसे समझाओगे ? मैं थोड़ा सोच रहा था। हमारे साथी शिक्षक वहां सामने बैठे हुए थे। एक शिक्षक साथी ने कहा कि इसे मैं समझाता हूं और वे उठ कर समझाने लगे कि आखिर जब आप लट्टू नचाते हैं तो जब तक लट्टू घूमता रहता है तब तक वह खड़ा रहता है। क्यों ? वही सिद्धांत यहां पर काम कर रहा है। और इसके अलावा आप रात में देखते हैं कि ध्रुव तारा क्यों सीधा (एक ही दिशा में) रहता है और बाकी सब तारे घूमते रहते हैं ? उन्होंने कुछ प्रयोग किए हुए थे लेकिन यह हमारी चर्चाओं में कभी नहीं आया था। फिर भी उन्होंने उन प्रयोगों को ध्यान में रखते हुए सोचा और खुद ही इस निष्कर्ष पर पहुंचे। ऐसा इसलिए कि पृथ्वी का जो अक्ष है वह ध्रुव तारे की तरफ काम करता है और क्योंकि यह घूम रहा है इसलिए अक्ष हमेशा एक ही दिशा से निकलेगा। यह देखकर मुझे लगा कि हमने जितनी भी कोशिश की है वह सफल हो गई। कम से कम उस शिक्षक ने इसके पीछे का मूल सिद्धांत पकड़ लिया था। और हमने इस बात पर कभी चर्चा नहीं की थी उनसे कि ये प्रयोग क्या सिद्ध करता है ? जब हम विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में गए थे तो वे खुद (वह शिक्षक) आठवीं कक्षा से आगे नहीं पढ़े थे। खुद उन्होंने विज्ञान नहीं पढ़ा लेकिन वे बच्चों को पढ़ाते थे।

विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कह

सकता हूं कि अगर शिक्षकों के साथ प्रयोग करते हुए, उन्हें सम्मान देते हुए यदि काम किया जाए तो वे सीखने के लिए तैयार रहते हैं। यदि बच्चों की तरह ही शिक्षकों को भी सीखने में आनन्द आएगा और उन्हें लगेगा कि सीखने के लिए कुछ नया मिल रहा है तो वे भी बच्चों के साथ बेहतर काम कर पाएंगे। और यदि एक बार वे सीख लेते हैं तो हमेशा के लिए बहुत ही मूल्यवान संदर्भ व्यक्ति बन जाते हैं। अगर आपको विज्ञान शिक्षण के स्तर को ऊपर उठाना है तो आप नए शिक्षकों को तो तैयार करिए ही लेकिन जो पुराने शिक्षक हैं वे भी संदर्भ व्यक्ति की भूमिका में काम कर सकते हैं।

प्रश्न : यह प्रश्न थोड़ा-सा अलग हट कर है। लेकिन ऐसा लगता है कि होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में विज्ञान शिक्षण को लेकर खूब काम हुआ है। उसका मुख्य फोकस भी विज्ञान शिक्षण ही था और विज्ञान शिक्षण में इस कार्यक्रम के प्रभाव से बहुत सारे बदलाव भी हुए हैं। लेकिन शाला के अन्य पहलुओं पर भी क्या उतनी गहराई से काम हुआ ? अन्य पहलुओं को छोड़कर एक ही विषय पर काम करते हुए क्या शाला में समग्रता में बदलाव संभव है ?

उत्तर : देखिए, जिस समय हम विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के लिए इकट्ठे हुए थे तब हम सभी वैज्ञानिक थे। हमारे दिल में उस समय यही बात थी कि विज्ञान अच्छे तरीके से कैसे पढ़ाया जाए। इसके लिए हमने दिल्ली में भी कोशिश की थी। बहुत ज्यादा काम हमने नहीं किया था। जहां मौका मिला वहां कोशिश की। क्योंकि उस समय हमारी उम्र भी 20-25-30 साल ही थी।

शुरूआत तो हमारी विज्ञान शिक्षण में बदलाव करने को लेकर थी। एक-डेढ़ साल में हमें यह पता चल गया कि केवल विज्ञान की बात करने से बात नहीं बनेगी। हमें यह लगने लगा कि कम से कम भाषा की भी बात करनी पड़ेगी और गणित की भी बात करनी पड़ेगी। क्योंकि अगर बच्चे भाषा में सक्षम नहीं हैं और आप चाहते हैं कि बच्चे अपने अनुभवों को अभिव्यक्त कर पाएं कि उन्होंने क्या देखा और उससे क्या निष्कर्ष निकलता है तो यह बिना समुचित भाषायी क्षमताओं के उनके लिए मुश्किल होगा। बिना समर्थ भाषा के अनुभवों को संजोने में भी दिक्कत ही आएगी बावजूद इसके कि उन्होंने प्रयोग किए हैं और निष्कर्ष निकाले हैं। किसी भी विषय की बेहतर पढ़ाई के लिए भाषा तो प्राथमिक उपकरण है। इसी तरह से गणित की भी बात है। अगर उनको गणित नहीं आता है तो औसत कैसे निकालेंगे। बिना औसत निकाले आप आगे बढ़ोगे कैसे ? हमने खुद तो नहीं लेकिन एकलव्य ने जब काम शुरू किया तब उसने सामाजिक अध्ययन पर तो काम किया ही गणित और भाषा पर भी प्राथमिक स्कूल पर काम शुरू किया। उन्होंने उच्च प्राथमिक स्तर पर यह काम नहीं किया। उन्होंने खुशी-खुशी नाम से पांच किताबें निकालीं। उच्च प्राथमिक स्कूलों में सामाजिक विज्ञान पर काम किया। यह कहा जा सकता है कि शुरू में हमारी खुद की समझ भी बहुत साफ नहीं थी कि काम कैसे किया जाए। हमने सोचा हम तो वैज्ञानिक हैं। हम विश्वविद्यालयों के विभागों में पढ़ाया करते थे। हमें छोटे बच्चों को पढ़ाने का तजुर्बा भी नहीं था। लेकिन अब कहा जा सकता है कि पहले से तजुर्बा नहीं होने से बहुत नुकसान हमें नहीं हुआ और एक मायने में तो ये अच्छा ही था। क्योंकि अगर उस समय हम शिक्षाविदों के चक्कर में पड़ जाते तो वे हमें दस तर्क देते कि आप जो करना चाहते हो वह तो कभी हो ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति में किसी भी नए व्यक्ति के लिए काम शुरू करना ही मुश्किल हो जाता। वे कहते कि भारत के स्कूलों के लिए तो यह संभव ही नहीं है। हम यह दिखाना चाहते थे कि कम लागत में भी आप प्रयोगात्मक तरीके से विज्ञान को अच्छी तरह से पढ़ा सकते हो। मेरे ख्याल से हमने यह सिद्ध करके दिखला दिया। कुछ लोग बाद में भी इस कार्यक्रम को लेकर इसी तरह की बातें करते रहे कि यह मुमकिन नहीं है, यह तो गांव वाली विज्ञान है। लेकिन एक वास्तविकता यह भी है कि वही कार्यक्रम बाद में शहरी स्कूलों तक भी पहुंचा। यदि आप प्रो. यशपाल के उस समय के लिखे लेख देखें जो उन्होंने इसी कार्यक्रम के अनुभवों पर लिखे थे और इस कार्यक्रम पर उठाए जा रहे सवालों के जवाब थे कि यह पिछड़ा हुआ विज्ञान नहीं है। कम लागत से विज्ञान पढ़ाने का मतलब यह नहीं है कि यह पिछड़ा हुआ विज्ञान है या विज्ञान ही नहीं है।

प्रश्न : किसी भी एक विषय या एक ही मुद्दे को लेकर शालाओं में काम करने का एक मतलब यह भी है कि बाकी विषय छूट ही जाते हैं। जैसे होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में कला शिक्षण तो एक विषय के रूप में छूट ही गया। पुनः वही बात है कि किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम में बदलाव का सवाल शायद संपूर्ण व्यवस्था से जुड़ा होता है।

उत्तर : ये कहा जा सकता है लेकिन हमारे कार्यक्रम में कुछ हद तक कला का कार्य होता था। कुछ हद तक ड्रांइग के रूप में, मिट्टी के काम के रूप में कुछ काम करवाए जाते थे। इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि यदि हमने सारे विषयों पर इकट्ठे काम किया होता तो उसका असर ज्यादा होता। क्योंकि यह तो बच्चों पर भी ज्यादती थी कि विज्ञान में तो आप तर्क करवा रहे हैं लेकिन भाषा में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। विज्ञान में आप खोज करवा रहे हैं भाषा में नहीं। अगर हमें दोबारा कोई मौका मिले तो हम यह गलती नहीं करेंगे। उस समय एक मौका मिल रहा था। लेकिन हमने भी बहुत सोचा नहीं था। किसी ने भी उस समय यह नहीं कहा था कि आप सारे विषयों को ले लें। हमने भी विज्ञान मांगा था और विज्ञान

पढ़ाने को मिल गया। अगर हमें उस समय ज्यादा अकल होती तो शायद और कोशिश करके हम भी एक बड़े समूह को तैयार कर सकते थे जिससे कि शालाओं में समग्रता में और ज्यादा स्थायी असर डाला जा सकता।

प्रश्न : ऐसा लगता है इस प्रकार के काम को करते हुए यदि शिक्षा दर्शन वाला पहलू छूटा रहेगा तो उसकी यह समस्या भी रहेगी कि समग्रता में काम करने की स्थिति नहीं बन पाएगी। क्योंकि इसके बिना जिसकी रुचि विज्ञान में होगी वह विज्ञान में काम करेगा और जिसकी रुचि गणित में होगी वह गणित में करेगा और इसी प्रकार अन्य विषयों के संदर्भ में भी हो सकता है।

उत्तर : इस संदर्भ में आपसे मैं सहमत हूं। मैं यह कहना चाहूंगा कि उस समय हमारे पास सीमित संसाधन और शक्तियां थीं। ऐसा भी नहीं था कि बहुत सारे मौके हमारे सामने थे। यह पहला ही मौका था। मैं 1966 से विश्वविद्यालय में पढ़ा रहा हूं। हमने दिल्ली में अलग-अलग तरह से विज्ञान शिक्षण को लेकर बहुत कोशिश की। अलग-अलग तरीके से कोशिश की। हम लोगों को भी यह अहसास विश्वविद्यालय में आने के बाद ही हुआ कि स्कूलों में विज्ञान शिक्षण के नाम पर जो कुछ हो रहा है उसमें गड़बड़ी है, वह उचित नहीं है और इसका प्रभाव आगे की पढ़ाई पर भी पड़ रहा था। हमारे उच्च शिक्षा संस्थानों में जिस तरीके से विज्ञान आनी चाहिए वह नहीं आ रही है। हमने इसके कारण जानने की कोशिश की।

आपको शायद मालूम होगा कि कुछ पब्लिक स्कूलों ने विज्ञान शिक्षण के लिए एक आल इण्डिया साइंस एसोसिएशन बनाया था। प्रो. यशपाल एवं हमारे कुछ दोस्त उसके परामर्शदाता थे। मैं भी उनमें एक था। बेहतर विज्ञान शिक्षण के कुछ प्रयास हमारे देश में होते रहे हैं।

विज्ञान यह कभी नहीं कहता कि हम सारी दृष्टि आपको दे रहे हैं। जिंदगी में और बहुत-सी चीजें हैं। विज्ञान का भी महत्त्व है। अपने बारे में ध्यान लगाकर सोचें कि आसपास में क्या हो रहा है ? जो कुछ भी हो रहा है उसके कारण जानने की कोशिश करें। विज्ञान की शुरूआत यहीं से होती है और यही नजरिया वैज्ञानिक चेतना का वाहक बनता है। ◆

शिक्षा विमर्श

शैक्षिक चिंतन एवं संवाद की पत्रिका

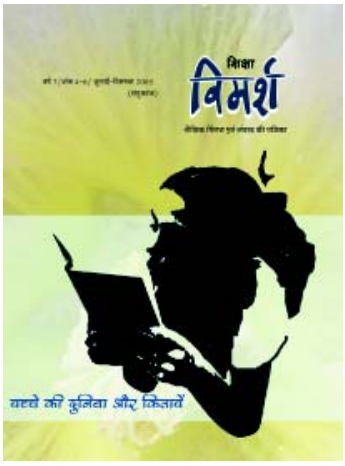

बाल साहित्य पर विशेषांक
पृष्ठ सं : 196
मूल्य : 100 रुपये
डाक व्यय : 25 रुपये

राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण पर केन्द्रित अंक
पृष्ठ सं : 64
मूल्य : 35 रुपये
डाक व्यय : 10 रुपये